Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 1 | (Jan – Mar 2026)

'उत्कोच' उपन्यास में प्रशासनिक भ्रष्टाचार और सामाजिक चेतना

डॉ. रेखा कुर्रे
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, महात्मा गाँधी सरकारी कला महाविद्यालय, माहि, पुदुच्चेरी

शोध सारांश :

प्रस्तुत शोध जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचित उपन्यास 'उत्कोच' (2019) के माध्यम से समकालीन भारतीय समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार की जड़ों और उसके बहुआयामी प्रभावों का विश्लेषण करता है। भ्रष्टाचार आज केवल एक प्रशासनिक व्याधि न रहकर भारतीय जीवन-शैली का एक अनिवार्य और विडंबनापूर्ण अंग बन चुका है। समाज में जहाँ एक ओर सार्वजनिक मंचों पर भ्रष्टाचार का विरोध होता है, वहीं व्यक्तिगत स्तर पर इसे 'व्यावहारिक तर्क' के आधार पर स्वीकार्यता प्राप्त है। उपन्यास का नायक 'मनोहर' इस भ्रष्ट व्यवस्था के विरुद्ध एक नैतिक प्रतिरोध के रूप में उभरता है, किंतु उसकी यह सैद्धांतिक और व्यावहारिक ईमानदारी उसे सामाजिक निर्वासन की ओर धकेल देती है। लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता से यह रेखांकित किया है कि एक आदर्शवादी व्यक्ति को न केवल कार्यस्थल (दफ्तर) में सवर्ण सहकर्मियों के जातिगत द्वेष, उपहास और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है, बल्कि उसके निजी और पारिवारिक संबंध भी इस संघर्ष की भेंट चढ़ जाते हैं। आर्थिक विपन्नता और व्यवस्थागत क्रूरता का चरम तब परिलक्षित होता है, जब उचित उपचार के अभाव में मनोहर की पत्नी की मृत्यु हो जाती है। यह उपन्यास केवल भ्रष्टाचार की समस्या तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आरक्षण के प्रति सामाजिक पूर्वाग्रह, जाति-व्यवस्था की गहरी पैठ और दफ्तरी राजनीति में व्याप्त भेदभाव को भी पूरी गहराई से उजागर करता है। निष्कर्षतः, जयप्रकाश कर्दम 'उत्कोच' के माध्यम से एक ऐसे यथार्थ का चित्रण करते हैं, जहाँ ईमानदारी की कीमत व्यक्तिगत क्षति और सामाजिक अलगाव के रूप में चुकानी पड़ती है।

मुख्य शब्द : भ्रष्टाचार, संघर्ष, उत्कोच, सामाजिक चेतना, जातिगत भेदभाव, आदर्शवाद, आर्थिक विपन्नता, मानसिक तनाव, सामाजिक समस्या, यथार्थ चित्रण।

प्रस्तावना

स्वतंत्रता के बाद भारत में अनेक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याएँ उभरकर सामने आईं, जिनमें भ्रष्टाचार सबसे गंभीर समस्या के रूप में दिखाई देता है। भ्रष्टाचार का आशय व्यक्तिगत लाभ के लिए कर्तव्य और कानून की जानबूझकर अवहेलना करना है। यह सार्वजनिक हित की उपेक्षा करते हुए निजी स्वार्थ को बढ़ावा देता है। आज राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक तथा सामाजिक सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की गहरी पैठ दिखाई देती है। सन 1960 के बाद हिंदी उपन्यास लेखन में 'नई कहानी' आंदोलन के माध्यम से एक महत्त्वपूर्ण मोड़ आया, जहाँ यथास्थितिवाद का स्थान संघर्ष और विद्रोह की चेतना ने ले लिया। इस युग के लेखन में मोहभंग, पारिवारिक विघटन, महानगरीय अकेलापन, बेरोजगारी और शिक्षित कामकाजी महिलाओं के दोहरे शोषण जैसी जटिल समस्याओं को प्रमुखता से उभारा गया। स्वतंत्रता के बाद जर्जर अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए किए गए राजनीतिक प्रयासों, जैसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण की समाप्ति के बावजूद, मुद्रास्फीति और बाजारवाद ने आर्थिक असंतुलन को और बढ़ा दिया। परिणामस्वरूप समाज में रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी गहरी हो गईं कि सरकारी तंत्र में 'मेज के नीचे' से लेन-देन एक परंपरा बन गई। हिंदी साहित्य की हर विधा ने इस सड़न का विश्लेषण किया, जिसमें श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'राग दरबारी' (1968) व्यवस्था में व्याप्त सर्वांगीण भ्रष्टाचार को उजागर करने वाला सबसे सशक्त और प्रामाणिक दस्तावेज सिद्ध हुआ। ठीक उसी प्रकार जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास 'उत्कोच' में इस समस्या का यथार्थ चित्रण किया गया है, विशेषकर सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का।

जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास 'उत्कोच' (2019) समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार की समस्या को केंद्र में रखकर लिखा गया एक महत्वपूर्ण दलित उपन्यास है।

'उत्कोच' का अर्थ 'रिश्वत' है, जो इस उपन्यास की मूल समस्या को स्पष्ट करता है। दलित साहित्य का उद्देश्य दलित समाज के दुःख-दर्द, शोषण और संघर्ष को अभिव्यक्त करना तथा सामाजिक चेतना को जागृत करना है। इसी संदर्भ में यह उपन्यास न केवल सामाजिक और दलित चेतना को उजागर करता है, बल्कि पारिवारिक जीवन में उत्पन्न तनाव और संघर्षों को भी सामने लाता है। लेखक ने इस रचना में सरकारी दफ्तरों में फैले भ्रष्टाचार, सामाजिक असमानता तथा दलित जीवन की विविध समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। "भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए सजगता और साहस जरूरी है। यह दोनों तत्व साहित्य के माध्यम से मस्तिष्क में अपनी जगह बना सकते हैं। एक ऐसा नायक जो भ्रष्टाचारियों से स्वयं लड़ता है और अपने संघर्ष के द्वारा दूसरों को संघर्ष का मार्ग दिखाता है।"[1] ठीक इसी प्रकार 'उत्कोच' उपन्यास का नायक मनोहर एक आदर्शवादी और ईमानदार दलित युवक है, जो भ्रष्ट व्यवस्था के बीच अपने सिद्धांतों पर दृढ़ रहने का प्रयास करता है और भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए उपाय भी बताता है।

आदर्श और भौतिकता का संघर्ष-

'उत्कोच' में सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ पारिवारिक जीवन की जटिलताओं का भी यथार्थ चित्रण किया गया है। परिवार मनुष्य के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण संस्था है, जहाँ प्रेम, सहयोग और पारस्परिक समझ की आवश्यकता होती है। किंतु आर्थिक विपन्नता के कारण पति-पत्नी के संबंधों में कटुता आ जाती है। मनोहर बिक्री कर विभाग में कार्यरत है और अत्यंत ईमानदार व्यक्ति है। वह रिश्वत लेना नैतिक रूप से गलत मानता है। मनोहर और उसकी पत्नी श्यामा के संबंधों में उत्पन्न तनाव मुख्यतः आर्थिक अभाव और भौतिक अपेक्षाओं के कारण है। मनोहर अपने सिद्धांतों के बारे में स्पष्ट रूप से कहता है— "इसमें डरने की बात नहीं है, उसूलों की बात है।"[2] इसके विपरीत श्यामा का मानना है कि आज के समय में केवल आदर्शों से जीवन नहीं चल सकता। वह व्यंग्य करते हुए कहती है— "जब पूरे देश में रिश्वत लेना संस्कृति-सी बन गई है, तब तुम ही क्यों आदर्शवादी बने बैठे हो?"3 श्यामा के लिए आर्थिक सुख-सुविधाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वह कहती है—"हैसियत पैसे से बनती है, सिद्धांत और आदर्शों से नहीं।"[4] मनोहर अपनी ईमानदारी पर अडिग रहते हुए उत्तर देता है— "जो काम न नैतिक रूप से ठीक है, न सामाजिक और न कानूनी, वह मैं कैसे करूँ?"[5]

इस प्रकार उपन्यास में पति-पत्नी के बीच आदर्श और भौतिकता का संघर्ष स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। श्यामा चाहती है कि उसे अन्य लोगों की तरह सुख-सुविधाएँ प्राप्त हों, जबकि मनोहर अपने नैतिक मूल्यों से समझौता करने के लिए तैयार नहीं है। अंततः इस आर्थिक और मानसिक तनाव के कारण उनके संबंधों में दूरी और असंतोष बढ़ने लगता है। लेखक ने इस स्थिति के माध्यम से यह दिखाया है कि आर्थिक अभाव और भौतिक आकांक्षाएँ पारिवारिक जीवन में कलह का कारण बन सकती हैं।

सामाजिक चेतना

उपन्यास में सामाजिक चेतना का महत्त्वपूर्ण चित्रण देखने को मिलता है। उपन्यास का नायक मनोहर केवल कार्यालय में ही नहीं बल्कि अपने पारिवारिक जीवन में भी नैतिक और मानसिक संघर्ष से गुजरता है। उसकी पत्नी श्यामा अक्सर उसकी ईमानदारी से असंतुष्ट रहती है, क्योंकि वह देखती है कि अन्य कर्मचारी भ्रष्टाचार के माध्यम से अधिक धन अर्जित कर रहे हैं, जबकि उनका परिवार आर्थिक कठिनाइयों का सामना कर रहा है। मनोहर अपनी पत्नी को समझाते हुए कहता है कि जीवन की वास्तविक सुख-शांति केवल धन से प्राप्त नहीं होती— "बहुत से लखपति-करोड़पति लोग हैं जिनके पास धन की कोई कमी नहीं, लेकिन उनकी जिंदगी में सुख-शांति नहीं होती।"[6] यह विचार दर्शाता है कि मनोहर के लिए नैतिकता और संतोष भौतिक समृद्धि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

उपन्यास में सुंदरलाल के माध्यम से भी सामाजिक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष सामने आता है। जब उसकी पत्नी स्कूल की एक बैठक में जाती है तो अन्य स्त्रियाँ उसके वैभव को देखकर यह टिप्पणी करती हैं कि यह सब "दो नंबर के पैसे" का परिणाम है। इस प्रकार समाज में भ्रष्ट कमाई के प्रति अविश्वास और आलोचना का दृष्टिकोण दिखाई देता है। इसी प्रकार सुंदरलाल का पुत्र प्रतीक भी स्कूल में अपने साथियों द्वारा "दो नंबर की औलाद" कहकर चिढ़ाया जाता है। जब प्रतीक अपनी माँ से इस शब्द का अर्थ पूछता है, तो उसे बताया जाता है कि "दो नंबर का मतलब गलत तरीके से कमाया गया पैसा होता है।"[7] यह घटना सुंदरलाल को गहराई से प्रभावित करती है और वह निर्णय लेता है कि अब वह रिश्वत नहीं लेगा। वह कहता है— "पैसा कम होगा तो कोई बात नहीं, लेकिन हमारा बच्चा तनाव-मुक्त और खुशहाल जीवन जी सके, यही अधिक महत्त्वपूर्ण है।"[8] इस प्रसंग के माध्यम से लेखक यह स्पष्ट करता है कि भ्रष्टाचार केवल आर्थिक या प्रशासनिक समस्या नहीं है, बल्कि इसका प्रभाव पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर भी पड़ता है।

मनोहर का दृष्टिकोण भी इसी विचार को पुष्ट करता है। वह मानता है कि भ्रष्ट तरीके से अर्जित धन से विलासिता तो प्राप्त की जा सकती है, किंतु उस पर गर्व नहीं किया जा सकता। ऐसे लोग भीतर से भय और असुरक्षा से ग्रस्त रहते हैं। इस प्रकार उपन्यास सामाजिक चेतना को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि व्यक्ति के निजी अनुभव वास्तव में व्यापक सामाजिक संरचनाओं और मूल्यों से जुड़े होते हैं।

उपन्यास में सामाजिक चेतना के साथ-साथ शिक्षा के अभाव की समस्या को भी रेखांकित किया गया है। सामाजिक चेतना से तात्पर्य उस जागरूकता से है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने समाज की संरचनाओं, समस्याओं और मूल्यों को समझता है। यह चेतना व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत अनुभवों को व्यापक सामाजिक संदर्भों- जैसे वर्ग, जाति और राजनीति से जोड़ने में सहायता करती है। उपन्यास केवल भ्रष्टाचार का ही नहीं बल्कि जातिगत भेदभाव का भी गहरा चित्रण करता है। भारतीय समाज में दलित समुदाय सदियों से सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक अधिकारों से वंचित रहा है। 19वीं शताब्दी में ज्योतिराव फुले तथा बाद में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के प्रयासों से दलित चेतना का विकास हुआ, जिसने समानता और आत्मसम्मान की भावना को मजबूत किया।

'उत्कोच' उपन्यास में मनोहर एक दलित कर्मचारी है। इसलिए उसे केवल ईमानदार होने के कारण ही नहीं बल्कि उसकी जाति के कारण भी उपहास और आलोचना का सामना करना पड़ता है। उसके सहकर्मी उसके साधारण जीवन और साइकिल से दफ्तर आने का मजाक उड़ाते हैं तथा आरक्षण के विषय में कटाक्ष करते हैं। यह स्थिति दर्शाती है कि आधुनिक प्रशासनिक ढांचे में भी जातिगत पूर्वाग्रह अब भी मौजूद है। कार्यालय में कुछ कर्मचारी यह भी कहते हैं कि आरक्षण के कारण "अयोग्य लोग" नौकरी पा रहे हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि आरक्षण दलित समुदाय के ऐतिहासिक शोषण की भरपाई का एक प्रयास है। उपन्यास में यह भी दिखाया गया है कि किस प्रकार दलित कर्मचारियों को केवल औपचारिक प्रतिनिधित्व देकर उनकी आवाज को दबा दिया जाता है। मनोहर का चरित्र इस संदर्भ में विशेष महत्त्व रखता है। वह शिक्षित और जागरूक व्यक्ति है, जो न केवल अपने अधिकारों के प्रति सजग है, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध भी आवाज उठाता है। उसका संघर्ष यह दर्शाता है कि शिक्षा केवल रोजगार प्राप्त करने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक जागरूकता और आत्मसम्मान का आधार भी है।

भ्रष्टाचार

उपन्यास का मुख्य विषय सरकारी कार्यालयों में फैली रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार है। इसका केंद्रीय पात्र मनोहर एक ईमानदार कर्मचारी है जो रिश्वतखोरी का विरोध करता है। उसकी ईमानदारी उसे अपने सहकर्मियों से अलग कर देती है, क्योंकि कार्यालय का वातावरण भ्रष्टाचार से ग्रस्त है। उपन्यास में कहा गया है— "घूस देने और लेने वाले दोनों का ही नैतिक पतन होता है तथा घूसखोरी का चक्र समाज के जीवन को निरंतर कलुषित करता रहता है।"[9] कार्यालय में यह स्थिति है कि बिना

रिश्वत के कोई काम नहीं होता। बड़े बाबू का कथन इस मानसिकता को स्पष्ट करता है— “कस्टमर आया बैठा है, अभी उसका काम हो जाएगा तो कुछ दान-दक्षिणा मिल जाएगी, नहीं तो बाद में कौन पूछता है।”[10] यह संवाद दर्शाता है कि सरकारी कार्य प्रणाली में रिश्वत एक सामान्य प्रक्रिया बन चुकी है। मनोहर इस प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कहता है कि स्वास्थ्य और नैतिकता किसी भी प्रकार की ‘दान-दक्षिणा’ से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उसके अनुसार रिश्वत एक रुपया भी हो तो वह भ्रष्टाचार ही है।

ऑफिस के बड़े बाबू मनोहर से सहानुभूति रखते थे। उन्होंने कहा- “ यह विभाग कोयले की खान है। कितना भी दूर रहो साफ नहीं रह पाओगे। तुमने कोयले की दलाली नहीं की। लेकिन फिर भी तुम्हारे हाथ काले हो गए न।”[11] स्पष्ट है की यदि जो व्यक्ति भ्रष्टाचारी नहीं है उसे भी लोग भ्रष्टचार में शामिल करने में लग जाते है। इसीलिए बड़े बाबू ने कोयले की दलाली का उदाहरण दिया। मनोहर की ईमानदारी के कारण उस पर झूठा रिश्वत का आरोप भी लगाया जाता है। परंतु जांच अधिकारी उसकी सत्यनिष्ठा को स्वीकार करते हुए कहता है— “मनोहर, मैं जानता हूँ कि तुम एक ईमानदार और नेक इंसान हो। तुम्हारे जैसे लोग बहुत कम होते हैं।”[12] इस प्रकार उपन्यास यह दिखाता है कि भ्रष्ट तंत्र में ईमानदार व्यक्ति को उपेक्षा, संदेह और षड्यंत्र का सामना करना पड़ता है।

उपन्यास में यह भी स्पष्ट किया गया है कि बढ़ती महंगाई और आर्थिक असमानता भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती हैं। कार्यालय के कर्मचारी यह तर्क देते हैं कि केवल वेतन से परिवार का भरण-पोषण संभव नहीं है, इसलिए “ऊपरी आमदनी” आवश्यक है। वे कहते हैं— “हम तो मात्र सौ-दो सौ रुपये लेते हैं, रिश्वत तो वह है जो लाखों-करोड़ों में ली जाती है।”[13] यह तर्क समाज में व्याप्त उस मानसिकता को उजागर करता है जिसमें छोटी रिश्वत को अपराध नहीं माना जाता। इसके विपरीत मनोहर का मत है कि भ्रष्टाचार की जड़ यही छोटी-छोटी अनैतिक प्रवृत्तियाँ हैं।

भ्रष्टाचार, जिसका विरोध करना भारतीय समाज का सबसे प्रिय शगल है, अब हमारी जीवन-शैली का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। आज हर कोई दूसरों के भ्रष्टाचार से त्रस्त है, किंतु स्वयं के भ्रष्टाचार के पक्ष में सबके पास अपने व्यावहारिक तर्क मौजूद हैं। जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास का नायक 'मनोहर' एक ऐसा आदर्शवादी है जो न केवल सैद्धांतिक, बल्कि व्यावहारिक रूप में भी रिश्वत का विरोध करता है। इस अडिग ईमानदारी के कारण उसे दफ्तर में सवर्ण सहकर्मियों के उपहास और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है, तो वहीं घर में पत्नी की नाराजगी और बीमारी का। लेखक ने यहाँ आरक्षण, जातीय भेदभाव और व्यवस्थागत भ्रष्टाचार के बीच फँसे एक व्यक्ति के मानसिक व सामाजिक संघर्ष को बड़ी बारीकी से चित्रित किया है।

निष्कर्ष

संक्षेप में, जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास ‘उत्कोच’ भारतीय प्रशासनिक तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार और जातिगत भेदभाव का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। यह दिखाता है कि भ्रष्ट व्यवस्था में ईमानदारी एक चुनौती बन जाती है और दलित कर्मचारियों को दोहरी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, एक ओर भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष और दूसरी ओर सामाजिक पूर्वाग्रह। जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास ‘उत्कोच’ केवल भ्रष्टाचार की समस्या का चित्रण नहीं करता, बल्कि यह दिखाता है कि भ्रष्टाचार और जातिगत भेदभाव किस प्रकार परस्पर जुड़कर दलित जीवन को और अधिक जटिल बना देते हैं। उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि आरक्षण के माध्यम से दलितों को सरकारी नौकरी मिल सकती है, किंतु सामाजिक सम्मान और समानता प्राप्त करने के लिए उन्हें अभी भी लंबा संघर्ष करना पड़ता है। इस प्रकार ‘उत्कोच’ उपन्यास यह संकेत करता है कि समाज में वास्तविक परिवर्तन के लिए शिक्षा और सामाजिक चेतना का विकास अत्यंत आवश्यक है।

उपन्यास यह संदेश देता है कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष केवल कानून से नहीं बल्कि व्यक्तिगत नैतिकता और सामाजिक चेतना से संभव है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर पर भ्रष्टाचार का विरोध करे तो समाज में परिवर्तन की संभावना उत्पन्न हो

सकती है। इसके साथ ही आर्थिक विषमता, महंगाई, शिक्षा की कमी और राजनीतिक उदासीनता भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती हैं। इन परिस्थितियों में ईमानदार व्यक्ति को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। 'उत्कोच' का व्यापक संदेश यह है कि समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, जातिगत भेदभाव, आर्थिक असमानता और नैतिक पतन मिलकर एक ऐसी सामाजिक संरचना निर्मित करते हैं जिसमें विशेष रूप से दलित समुदाय के लिए जीवन निरंतर संघर्ष का रूप ले लेता है। इसलिए इन समस्याओं का समाधान केवल प्रशासनिक सुधारों से नहीं, बल्कि सामाजिक मूल्यों और नैतिक चेतना के विकास से संभव है। साथ ही उपन्यास ईमानदारी, नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारी के महत्त्व को भी रेखांकित करता है

संदर्भ सूची –

1. सिंह, शरद (15 मार्च 2022). शरदाक्षरा ब्लॉगस्पॉट।
2. कर्दम, जयप्रकाश (2019). उत्कोच। नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 76।
3. वही, पृ. 77।
4. वही, पृ. 90।
5. वही, पृ. 91।
6. वही, पृ. 82।
7. वही, पृ. 134।
8. वही, पृ. 135।
9. शर्मा, डॉ. देवेन्द्र नारायण (प्रथम संस्करण 2007). साठोत्तर हिंदी उपन्यासों में सामाजिक समस्याएं। दिल्ली: पंकज बुक्स, पृ. 22।
10. कर्दम, जयप्रकाश (2019). उत्कोच। नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 47।
11. वही, पृ. 47।
12. वही, पृ. 50।
13. वही, पृ. 65।